संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 6 | पृष्ठ : 16 | जनवरी 2012 | नयी दिल्ली

गण या तंत्र?

संवादसेतु

संपादक
आशुतोष

संपादक मंडल
अमल कुमार श्रीवास्तव
नेहा जैन
सूर्यप्रकाश

कार्यालय
प्रेरणा, सी–56/20,
सेक्टर–62, नोएडा

संपर्क:
0120-2400335
mail@samvadsetu.com
वेब : samvadsetu.com

अनुरोध
संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

आवरण कथा
पत्रकारिता किसकी, गण की या तंत्र की 3

न्यू मीडिया
न्यू मीडिया बनाम बदलता विज्ञापन 5

परिप्रेक्ष्य
प्राथमिकताओं से गायब एक 'प्लेटफॉर्म' 6

विचार
शिक्षा प्रचार का साधन हैं समाचार पत्र– महावीर प्रसाद द्विवेदी 8

साक्षात्कार
पंचायती राज से रूबरू नहीं है मीडिया– श्रीपाल जैन 9

श्रद्धा सुमन
साहित्यिक पत्रकारिता के स्तंभ– शिवपूजन सहाय 11

परिचर्चा
मीडिया पर निगरानी सही या गलत 12

शोध
ऑनलाइन हिन्दी दैनिकों में प्रकाशित राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों का अध्ययन 13

लेख
हिन्दू धर्म तथा योग के विकास में धार्मिक चैनलों की भूमिका 14

इतिहास को कैमरे में कैद करने वाली 'डालडा–13' का निधन 15

मीडिया शब्दावली 16

गणतंत्र दिवस के अवसर पर यह अंक निकालने की योजना हमारे मीडिया साथियों की थी। सब का मानना था कि इस अवसर पर देश की संप्रभुता जिस जनता में निहित है, उसके सरोकारों की बात की जाये। जाहिर है इस पत्रिका का कलेवर जनता से जुड़ी पत्रकारिता पर रहना था।

गणतंत्र के सबसे मौलिक (इसे निचला कहना ठीक नहीं) पायदान, पंचायत की गतिविधियों से जुड़ी पत्रिका पंचायती राज के संपादक से बात–चीत हुई तो उन्होंने इस बात पर गहरा खेद जताया कि गांव के स्तर पर उठने वाली समस्याएं मीडिया के एक बड़े वर्ग के फोकस से बाहर हैं। वहां पर होने वाली अच्छी घटनाएं भी अनजानी रह जाती हैं। कभी–कभी सनसनी पैदा करने वाली खबरें तो जगह पा जाती हैं, किन्तु वहां की रचनात्मकता को अभिव्यक्त करने का कोई जरिया नहीं है।

दूरदर्शन और आकाशवाणी पर ग्रामीण भाइयों के लिये जो कार्यक्रम आते हैं वे भी अब टाइप्ड हो गये हैं। सबसे ज्यादा तकलीफदेह है उसकी विषय वस्तु जो यह मान कर ही तैयार की गयी लगती है कि गांव का हर आदमी अनपढ़ और जाहिल है। मानो अगर इन वैज्ञानिक महोदय ने नहीं बताया तो किसान जान ही नहीं सकेगा कि खेती कैसे की जाती है।

दो साल पहले मैं जब गांव की देशव्यापी यात्रा पर निकला था तब भी मुझे यह लगा था कि नीतियां विपरीत दिशा में बन रही हैं। दो वर्ष बाद आज पुनः यह स्मरण आ रहा है कि हालत जस की तस है। यह वैसी ही तब तक बनी भी रहेगी जब तक कि जिन पत्रकारों को इनकी रिपोर्टिंग करनी है अथवा जिन प्रोड्यूसरों को इससे जुड़े कार्यक्रम निर्माण करने हैं, उनका संवाद गांव से स्थापित नहीं होगा।

गांव ही नहीं, शहरों के पिछड़े इलाकों तक भी पत्रकार की पहुंच तभी होती है जब कि वहां कोई दुर्घटना हो जाये। तब दुर्घटना के कारणों की फौरी पड़ताल करके संवाददाता अपने विवेक से एक कहानी सी गढ़ देता है।

हालांकि इसके सत्य का एक और पहलू भी है। इन पत्रकारों में से अधिकांश स्वयं भी ऐसी ही किसी पृष्ठभूमि से आया होता है। किन्तु छः दशक से जारी व्यवस्था में अपने–आप के मूल्यांकन के पैमाने भी इतने सिकुड़ गये हैं जिसमें अपना ही कद नहीं समाता। अपने आइने में अपना चेहरा ही बेगाना लगता है। इस आत्मबोध के अकाल में आदमी उन परिस्थितियों का भी सटीक विश्लेषण करने में असफल रहता है जिनमें वह जीता है।

जयप्रकाश जी से जब इस विषय में चर्चा हुई तो जवाब में उन्होंने डरबन प्लेटफॉर्म पर अपना लेख ही भेज दिया। उनका कहना था कि जब तक फार्मूला वन रेस को देश के विकास का पैमाना साबित करने और आम आदमी के सरोकारों को हाशिये पर डालने की नीति चलेगी, देश के महाशक्ति की ओर बढ़ने की बात बेमानी है।

यह संयोग ही था कि एक ओर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और शिवपूजन सहाय का स्मरण भाई सूर्यप्रकाश कर रहे थे तो दूसरी ओर विज्ञापन की दुनिया पर वन्दना शर्मा कलम चला रही थीं। सभी विषयों में परस्पर कोई सीधा संबंध न होते हुए भी अगर कुछ साम्य था तो यही, कि हर लेख का लेखक आम आदमी की हैसियत से पत्रकारिता में अपना योगदान करने को तत्पर था।

कुल मिलाकर यह अंक एक डिपार्टमेंटल स्टोर जैसा बन पड़ा है। देखें तो यही स्थिति आज के हर समाचार पत्र की है। पाठकों के हर वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये वह हर उम्र और रुचि के लोगों के लिये कुछ–न–कुछ छापता है और फिर धीरे से उसकी पुतलियों को बगल के विज्ञापन की ओर मोड़ देता है।

संवादसेतु की संपादकीय टोली का प्रयास इस दृष्टि से खास कहा जा सकता है कि वह यह जानते हुए भी कि इस विषयवस्तु को कभी विज्ञापन नहीं मिलेंगे, पत्रिका को निरंतर निकालने का दुस्साहस कर रहा है। गणतंत्र में गण की सहभागिता सुनिश्चित करने का यह एक छोटा किन्तु दृढ़ प्रयत्न है।

भवदीय
संपादक

पत्रकारिता किसकी, गण की या तंत्र की

आशुतोष

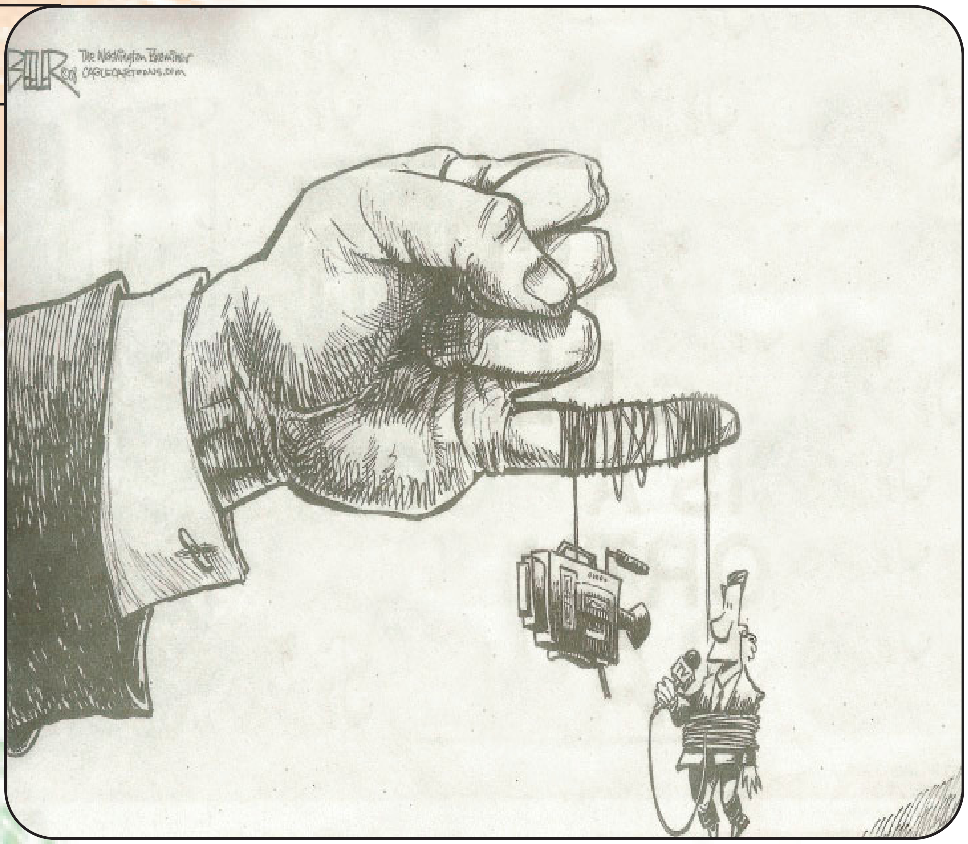

भारत दुनिया का सबसे बड़ा गणतंत्र है। अगर आपातकाल के 19 महीने निकाल दिये जायें तो देश में निरंतर गणतांत्रिक पद्धति से शासन चला है। देश का प्रत्येक नागरिक इस पर गर्व का अनुभव करता है। जो इस गर्वानुभूति से वंचित रहते हैं उन्हें हर 26 जनवरी को यह याद दिलाने का सरकारी प्रयास किया जाता है।

निस्संदेह एक देश के रूप में यह भारत की उपलब्धि है। अपने पड़ोसी देशों से जब हम तुलना करते हैं तो पाते हैं कि गणतंत्र को बनाये रखना भी अपने आप में बड़ी बात है।

गणतंत्र की एक मोटी अवधारणा आम नागरिक को परोसी गयी है जिसमें देश का सारा प्रशासन कार्यपालिका, न्यायपालिका और व्यवस्थापिका रूपी खम्बों पर खड़ा है। मीडिया इसका स्वयंभू चौथा खम्बा है।

प्रेस की स्वतंत्रता को प्रकारान्तर से गणतंत्र की गारंटी साबित करने की कोशिश की जाती है। अनेक बार मीडिया वे सुविधाएं और छूट भी लेने की कोशिश करती है जो बाकी के तीन खम्बों को हासिल नहीं है। इन तीनों खम्बों में से कोई जब इसे साधने या सावधान करने की कोशिश करता है तो मीडिया इसे गणतंत्र पर हमला बताने लगती है।

गणतंत्र हो या कोई और व्यवस्था, मीडिया आज दुनिया के हर देश में मौजूद है। लेकिन सभी जगह वह अलग–अलग भूमिका में है। साम्यवादी शासन प्रणाली वाले देशों में वह सत्ता के प्रवक्ता के रूप में है। तानाशाही शासन में भी वह बंधनों में जकड़ी है। इस तुलना में गणतांत्रिक देशों में उसे अनेक घोषित–अघोषित वरीयताएं हासिल हैं।

गणतांत्रिक देशों का मीडिया अक्सर अन्य देशों की मीडिया पर तरस खाती है। उसका मानना है कि जिस स्वतंत्रता का उपभोग करने की स्थिति में गणतांत्रिक देशों का मीडिया है, उससे वे वंचित हैं। लेकिन इन्हीं गणतांत्रिक देशों का मीडिया अपनी स्वतंत्रता का उपभोग करते हुए गणतंत्र को मजबूत करने में कितना योगदान दे रहा है, यह प्रश्न यदा–कदा उठता रहता है।

अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया जैसे गणतंत्रों में ही मीडिया ने अपने–आप को एक व्यवसाय साबित करने की कोशिश की और वहां की न्यायपालिका ने मीडिया के इस तर्क को मान्यता प्रदान की। ऑस्ट्रेलिया की अदालत का फैसला अनेक बार उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें अखबार के उत्पादन की चीनी या जूते के उत्पादन से तुलना की गयी थी। फैसले में कहा गया कि समाचार–पत्र प्रकाशन किसी भी अन्य व्यवसाय की तरह एक व्यवसाय है और उससे किसी नैतिक जवाबदेही की आशा नहीं की जानी चाहिये।

दुनिया के सबसे बड़े गणतंत्र की पत्रकारिता के नाते भारतीय मीडिया को एक टेस्ट केस के रूप में लिया जा सकता है। यद्यपि अभी तक भारत में आस्ट्रेलिया जैसे वाद नहीं चले हैं किन्तु वैसे ही गैर जिम्मेदाराना तर्क बड़े भारतीय मीडिया समूह भी देते रहे हैं। उनके आचरण में कहीं भी राष्ट्रीय, सामाजिक अथवा लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति आस्था और आग्रह परिलक्षित नहीं होता।

भारत में स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी के कार्यकाल में देश पर आपातकाल लागू कर तानाशाही थोपने की कोशिश हुई। जब देश का आम नागरिक लोकतंत्र की बहाली के लिये जूझ रहा था, दिग्गज कहलाने वाले पत्रकार सत्ता का स्तुतिगान कर रहे थे। उस समय अधिकांश पत्रकारों के बारे में की गयी टिप्पणी आज भी दोहरायी जाती है कि जब पत्रकारों को झुकने के लिये कहा गया तो वे रेंगने लगे।

हाल ही में जब भ्रष्टाचार के विरुद्ध देश में माहौल बनना शुरू हुआ तो समाज के हर कोने से आवाज उठने लगी। लेकिन जब परतें खुलनी शुरू हुईं तो सामने आया कि पहरुए पत्रकार भी इस खेल में गहरे तक शामिल हैं। काम कराने के बदले दलाली के अनियमित अवसरों को स्थायी व्यापार में बदलने के लिये कॉरपोरेट घरानों के मनमाफिक मंत्रियों की नियुक्ति हेतु लॉबिंग में देश के जाने–माने पत्रकार जुटे थे।

गणतंत्र के तीनों खम्बे भ्रष्टाचार से ग्रस्त हैं। देश का गण लाख चाह कर भी तंत्र की जकड़ से आजाद नहीं हो पा रहा है। भ्रष्टाचार को उजागर करने का काम जिस चौथे खम्बे को करना था उसने इन भ्रष्टाचारी तत्वों के साथ समझौता कर लिया। राजनेता और पत्रकारों

का यह गठजोड़ गणतांत्रिक मूल्यों में आ रही गिरावट का एक बड़ा कारक बनता जा रहा है। परिणाम यह है कि मीडिया गण का प्रतिनिधित्व करने के बजाय तंत्र का पोषक बन गया है।

एक–ध्रुवीय विश्व में प्रायः सभी गणतंत्र पूंजीवाद की ओर बढ़े। पूंजीवादी व्यवस्था ने समूचे गणतंत्र को ही मुद्रा के सांचे में ढाल दिया। वहां का मीडिया भी उसी रास्ते पर चल पड़ा।

पूंजीवाद में सारी आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र मुनाफा होता है। अधिक मुनाफे के लिये अधिक बिक्री और अधिक बिक्री के लिये अधिक उत्पादन आवश्यक है। नयी प्रौद्योगिकी ने बड़ी मात्रा में उत्पादन की अपार संभावनाएं खोल दीं। बिना मांग के तैयार उत्पादों को खपाने के लिये एक बड़े बाजार की जरूरत थी। आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के आश्वासन के बदले ग्राहक को आकर्षित कर बाजार तक खींच लाने का जिम्मा मीडिया ने अपने कंधों पर ले लिया।

बाजार ने अपनी आर्थिक ताकत के बल पर मीडिया ही नहीं अपितु लोकतंत्र के सभी खम्बों को अपने अनुकूल ढाल लिया। गणतंत्र में से तंत्र अब बाजार के साथ है। तंत्र और बाजार, दोनों मिल कर गण का अपने–अपने हित में दोहन कर रहे हैं। गण दोनों का ही आखेट बन रहा है और यह अनायास नहीं बल्कि सुनियोजित प्रयास है, यह खबर मीडिया से गायब है।

मीडिया से खबर के गायब होने की यह घटना भी अनायास नहीं है। यह भी सुनियोजित है। खबर की जगह अब विज्ञापन ने ले ली है। विज्ञापन भी खबर के रूप में लिखे जा रहे हैं। खबर के अंदर भी विज्ञापन है। किसी उत्पाद की ओर आकर्षित करने की कोशिश है। खबरों की भी उत्पाद की तरह पैकेजिंग की जा रही है। रंगीन फोटो से उसे सजाया जा रहा है। खोखली खबरों को चमकीले कागज में लपेट कर बेचा जा रहा है।

इसके विपरीत जनता के सरोकार वाली खबरें स्थान खो चुकी हैं। किसान की समस्या आज खबर नहीं है, आत्महत्या खबर है। मजदूर की भूख खबर नहीं है, मनरेगा के अहसान तले दबे मजदूर की मजबूर मुस्कान का विज्ञापन पहले पृष्ठ पर जगह पाता है। देश में गाय की कई नस्लों की संख्या सैकड़ों में रह गयी है। किन्तु गोवध पर प्रतिबंध की मांग करना दकियानूसी है। बाघों की संख्या घटती जाने की चिन्ता हर समाचार पत्र को सताती है, क्योंकि उसके संरक्षण के अभियान में सेलेब्रिटी शामिल हैं। कोई अखबार कस्तूरी मृग की घटती संख्या पर तब तक चिंतित नहीं होगा जब तक उसके लिये भी किसी सेलेब्रिटी की विज्ञापनी करुणा न जाग उठे।

जो खबर नहीं है, उसे खबर के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, यह अर्धसत्य है, इसके दूसरे अधपन्ने पर वह इबारत लिखी है जिसे खबर होना चाहिये था किन्तु उसे फाड़ कर निकाल दिया गया। डेस्क पर जिन खबरों की बलि चढ़ा दी जाती है उनका कोई बही–खाता किसी अखबार का दफ्तर नहीं रखता। किस खबर की जान संवाददाता को मिलने वाले गिफ्ट ने ली है और किस खबर को भारी–भरकम विज्ञापन रौंदता हुआ निकल गया, यह कोई नहीं जान पाता।

दुर्घटनाओं में मरी हुई इन खबरों का मातम कोई नहीं मनाता। इनका जनाजा भी नहीं उठता। इन्हें तो बस लावारिस लाश की तरह दफन कर दिया जाता है। एक गहरी चुप्पी ही इनकी श्रद्धांजलि होती है। इन खबरों के पीछे का आदमी भी उतनी ही खामोशी से फ्रेम से गायब हो जाता है। गली–मुहल्ले से छपने वाले किसी बेहद छोटे, एकल स्टाफ समाचार–पत्र का दुस्साहसी संपादक, जो अपने–आप को मुहल्ले का गांधी समझता है, कभी–कभी ऐसी खबर को छाप कर क्रांति का बीजारोपण करने की कोशिश करता है। लेकिन उसके समाचार–पत्र का व्यक्तित्व भी विधवा की सूनी मांग सा होता है जिसे कभी रंगीन विज्ञापन हासिल नहीं होते। बिना विज्ञापन के उसका पत्र व्यपारिक प्रतिस्पर्धा में कहीं टिक नहीं पाता।

ऐसे अधिकांश पत्र–पत्रिकाओं की नियति या तो बलिदानी भाव से कुछ अंक प्रकाशित कर पत्रकारिता की दुनिया में अपना नाम अमर कर जाने की होती है अथवा बड़े अखबारों के सप्लीमेंट से नायिकाओं की उत्तेजक तस्वीरें चुराकर (जिनमें से अधिकांश उन अखबारों द्वारा भी विदेशी समाचार–पत्रों की वेबसाइट से डाउनलोड की गयी होती है) उन्हें खुजली के मरहम, लंबाई बढ़ाने के कैपसूल और गुटखे जैसे जनोपयोगी विज्ञापनों के बीच स्थापित कर जैसे–तैसे अंक छापने की कवायद करते रहने की होती है।

संपादक संस्था के समाप्त होने पर चर्चा करना जो किसी जमाने में सेवानिवृत्त बुद्धिजीवियों के चिंतन का प्रमुख अंश रहता था, अब स्कूलों में होने वाली वाद–विवाद प्रतियोगिताओं से भी बाहर हो गया है। संपादक की जगह अब प्रबंध संपादक ने ले ली है। अखबार निकालने अथवा चैनल चलाने तथा सरकार और कार्पोरेट जगत से विज्ञापन जुगाड़ने से लेकर मंत्रिमंडल के गठन में हस्तक्षेप करने तक की जिम्मेदारी अब प्रबंध संपादक की ओर है। छोटे और मझोले पदों पर बैठे पत्रकारों की हैसियत अब दिहाड़ी मजदूर से ज्यादा नहीं है। अधिकांश पदों पर स्थायी नियुक्ति के स्थान पर संविदा नियुक्तियां की जा रही हैं जिसके कारण पत्रकार के ऊपर हमेशा भय की तलवार लटकी रहती है। वेज बोर्ड की सिफारिशें अखबार मालिकों की मेज पर धूल चाट रही हैं। हाल ही में देश का सबसे अधिक पाठक वाला अखबार होने का दावा करने वाले एक हिन्दी दैनिक ने अपने सभी कर्मचारियों से एक शपथपत्र पर हस्ताक्षर करवाये जिसका सारांश था कि वे अपने वर्तमान वेतन से संतुष्ट हैं और उन्हें इससे अधिक वेतन अथवा वेजबोर्ड द्वारा निर्धारित वेतनमान की कोई आवश्यकता नहीं है।

अनगिनत उदाहरण मिल जायेंगे जब पत्रकार द्वारा सुबूत जुटाये जाने के बाद भी भ्रष्टाचार अथवा अनियमितता से जुड़ी खबरें संबंधित लोगों के दवाब में नहीं छप सकीं। ऐसे भी उदाहरण हैं जब सच छापने के पत्रकार के जुनून के कारण उसे अपनी नौकरी से ही हाथ धोना पड़ा। उदाहरण ऐसे भी मौजूद हैं जब भ्रष्टाचार और ब्लैकमेलिंग में शामिल पत्रकार सब कुछ पता होने के बाद भी अपने प्रबंधन की आंख का तारा बना रहा। इन परिस्थितियों में कोई पत्रकार गण की पत्रकारिता करने का साहस कैसे कर सकता है।

भारत में मीडिया बाजार के मूल्यों को जीवनमूल्य के रूप में स्थापित करने पर आमादा है। प्रश्न यह भी है कि जब बड़े मीडिया संस्थान तंत्र के पोषण में जुटे हैं तो गण की पत्रकारिता कौन करे। क्या यह हाशिये पर खड़े उन छोटे प्रकाशनों की जिम्मेदारी है जिसे मजाक में वन मैन आर्मी कहा जाता है। गण की समस्याओं और सवालों को संबोधित किये बिना क्या पत्रकारिता जीवंत रह सकती है। और सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि देश की मीडिया किसकी पत्रकारिता कर रही है, गण की या तंत्र की। इन प्रश्नों का उत्तर पत्रकारों की उस जमात को खोजना होगा जो यह अनुभव करते हैं कि गण को शिक्षित करने तथा उदात्त मूल्यों की ओर प्रेरित करने का काम पत्रकारिता का बुनियादी काम है। ■

न्यू मीडिया बनाम बदलता विज्ञापन

वंदना शर्मा

मानव सभ्यता के विकास क्रम में बाजार भी सदैव एक महत्वपूर्ण तत्व रहा है। बाजार वह शक्ति है जो समाज के सभी सरोकारों की दिशा तय करती है। बाजार की इस शक्ति को गति देने का कार्य बाजार का महत्वपूर्ण उपक्रम विज्ञापन करते हैं। ''जो दिखता है, वो बिकता है'' की तर्ज पर विज्ञापन लोगों की सोच को प्रभावित कर वस्तुओं एवं सेवाओं के उपयोग अथवा उपभोग के लिए आकर्षित करते हैं।

संचार के नए आयामों के स्थापित होने के कारण विज्ञापन जगत ने भी संचार के नवीनतम साधनों को ही अपना माध्यम बनाया है, जिसका प्रमुख उदाहरण है न्यू–मीडिया अथवा सोशल मीडिया। वह मीडिया जो वैश्विक स्तर पर विभिन्न आंदोलनों और क्रांतियों को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण साधन रहा है। उसी सोशल एवं न्यू–मीडिया के माध्यम से विज्ञापन जगत ने भी अपनी पहुंच का विस्तार किया है।

बीते कुछ सालों में 'न्यू मीडिया एडवर्टाइजिंग' के प्रचार–प्रसार में बढ़ोत्तरी हुई है। हालांकि भारत में अभी भी यह बहुत प्रचलन में नहीं है। 'न्यू मीडिया एडवर्टाइजिंग' ऑनलाइन एडवर्टाइजिंग का ही रूप है। समाचार पत्रों में विज्ञापन का बहुत पहले से आधिक्य रहा है। आजकल समाचार पत्रों में तो 60:40 के अनुपात के अनुसार ही कार्य होता है। किंतु अब विज्ञापन समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और टेलीविजन से ऊपर उठकर अपने डिजिटल रूप में आ चुके हैं। टेलीविजन की स्क्रीन तथा अखबार के पन्नों से निकलकर विज्ञापन, कंप्यूटर और स्मार्ट फोन पर डिस्प्ले होता है।

इंटरनेट कनेक्शन या इंटरनेट उपभोक्ता होने के साथ ही विज्ञापनों को लक्षित उपभोक्ता मिल ही जाते हैं। फेसबुक, ट्विटर, ऑरकुट, लिंक्डइन के अलावा भी कई अन्य सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से अलग–अलग ब्रांड्स के प्रोडक्ट का प्रचार किया जाने लगा है। सेल्स प्रमोशन के लिए विभिन्न प्रयोग किये जाने लगे हैं। कुछ ब्लॉग्स के साथ भी प्रचार–प्रसार के लिये प्रयोग किये जाते हैं। इसके लिए इन ब्लॉग्स को नया नाम 'एडवर ब्लॉग' दिया गया है।

ई–मेल, वेबसाइट्स या वेबपेज के जरिये विज्ञापनों को लक्षित उपभोक्ता तक पहुंचाया जाता है। इसके अतिरिक्त लिंक्स देकर भी उपभोक्ता को विज्ञापनों से रू–ब–रू कराया जाता है।

'न्यू मीडिया एडवर्टाइजिंग' का सबसे बड़ा लाभ है कि यह कम खर्चीला है। अन्यथा किसी भी प्रोडक्ट के प्रमोशन के लिये अखबारों में विज्ञापन, पोस्टर, पैम्फ्लेट, साइनबोर्ड, होर्डिंग्स या मौखिक प्रचार माध्यमों में हजारों का खर्च आता है। टेलीविजन की स्क्रीन पर 30 सेकंड के लिए लाखों का खर्च आता है। न्यू मीडिया एडवर्टाइजिंग के अंतर्गत जिन उपभोक्ताओं के लिए बैनर या पॉपअप बनाये जाते हैं, उन्हें तैयार भी उसी के अनुरूप किया जाता है।

इन विज्ञापनों के लिए ग्राफिक डिजाइन को ही प्राथमिकता दी जाती है। मात्र प्रस्तुति से ही उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। विज्ञापनों के अन्य साधनों की ही तरह ऑनलाइन विज्ञापनों में भी विज्ञापित उत्पाद के लिये उपयुक्त स्थान चुना जाता है। उदाहरण के लिए फेसबुक के उपयोगकर्ताओं में सबसे अधिक युवा हैं। उपयोगकर्ताओं को मद्देनजर रखते हुए किताबें, शिक्षा संस्थान, पिज्जा ऑन कॉल, क्लॉदिंग्स, घड़ियां आदि के विज्ञापनों को ज्यादा तरजीह दी जाती है। वहीं किसी भी अन्य वेबसाइट के विज्ञापनों में लोन, प्लॉट, घर, टूर एंड ट्रैवल्स दिखते हैं।

न्यू–मीडिया के मंच पर विज्ञापन जगत की बढ़ती सफलता का एक कारण यह भी है कि इंटरनेट उपयोगकर्ता अधिकतर वे लोग हैं जो शहरी मध्यवर्ग का हिस्सा हैं। गौरतलब है कि भारत के बाजार को गति देने में शहरी मध्यम वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह वर्ग अधिकतम उपयोग और उपभोग की अवधारणा का सृजनकर्ता है। यही कारण है कि न्यू–मीडिया के उपयोगकर्ता के रूप में यह वर्ग विज्ञापन कंपनियों की मंजिल बन गया है, जिसे न्यू–मीडिया ने एक सुलभ और सस्ता माध्यम प्रदान किया है।

'न्यू मीडिया एडवर्टाइजिंग' ने न्यू मीडिया में विज्ञापन की एक बड़ी इंडस्ट्री को जन्म दिया है। इन विज्ञापनों के द्वारा उपयोगकर्ता सीधे निर्माताओं के साथ संपर्क स्थापित करने में भी सक्षम रहता है। आजकल निर्माता अपने काम को और बेहतर बनाने के लिए विज्ञापनों के साथ फीडबैक का भी विकल्प साथ देने लगे हैं। स्मार्ट फोन होने से लक्षित उपभोक्ता व्यक्तिगत तौर पर भी जुड़ जाता है।

भारत में जैसे–जैसे इंटरनेट का विस्तार हो रहा है, वैसे–वैसे 'न्यू मीडिया एडवर्टाइजिंग' का प्रभाव भी बढ़ रहा है। इन विज्ञापनों को अपनी स्थानीय भाषा में भी तैयार किया जा सकता है। सस्ते होने के साथ–साथ यह उपभोक्ताओं को अपनी बात पहुंचाने का आसान व सुलभ तरीका भी है।

'न्यू मीडिया एडवर्टाइजिंग' यानी ऑनलाइन विज्ञापन दुनिया के किसी भी कोने तक अपनी पहुंच बनाए रखता है। अमेरिका, ब्रिटेन और चीन जैसे देशों में लोगों के बीच ऑनलाइन शॉपिंग बहुत लोकप्रिय है लेकिन भारत में अभी भी इसमें थोड़ा वक्त लग सकता है। बावजूद इसके यह कहना सही होगा कि आने वाले वर्षों में 'न्यू मीडिया एडवर्टाइजिंग' का भविष्य और बेहतर होगा। ■

प्राथमिकताओं से गायब एक 'प्लेटफॉर्म'

जयप्रकाश सिंह

किसी व्यक्ति, व्यवस्था, समाज अथवा संस्था की प्राथमिकताएं उसकी भविष्यदृष्टि की बेहतरीन संकेतक होती हैं। प्राथमिकताएं व्यक्ति अथवा व्यवस्था की विशेषताओं की तरफ संकेत करती हैं, खूबियों और खामियों के बारे में बताती हैं। इसलिए व्यक्ति अथवा व्यवस्था का विश्लेषण करते समय उनकी प्राथमिकताओं पर नजर डालना आवश्यक हो जाता है। मीडिया भी मौजूदा व्यवस्था को प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण संस्था है। इसलिए मीडिया की प्राथमिकताओं पर दृष्टिपात किए बिना इसकी दशा–दिशा का सही अंदाजा नहीं लगाया जा सकता।

वर्ष 2011 में मीडिया की भूमिका का विश्लेषण करते समय हमारी दृष्टि अन्ना आंदोलन तक सिमट कर रह जाती है। इस आंदोलन में मीडिया ने व्यवस्था विरोधी भूमिका निभाकर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को प्रकट किया। इस भूमिका के कारण ही मीडिया के प्रति समाज में पनप रहा 'विश्वसनीयता का संकट' भी एक हद तक दूर हुआ। इसमें कोई दो राय नहीं कि अन्ना आंदोलन ने भारत की नई पीढ़ी को राजनीतिक दृष्टि से प्रशिक्षित किया है। आम लोगों को 'लोक सम्प्रभुता' का अहसास दिलाया है। लेकिन इस आंदोलन के कोलाहल में मीडिया से ऐसा बहुत कुछ अनसुना और अनकहा रह गया जो इस नीले ग्रह पर जीवन को बनाए रखने के लिए अतिशय महत्वपूर्ण है। डरबन प्लेटफॉर्म एक ऐसा ही घटनाक्रम है, जो मानवीय अस्तित्व और भारतीय भविष्य को निर्णायक रूप से प्रभावित करेगा। हैरत की बात यह है कि इस घटनाक्रम की अनुगूंज मीडियाई गलियारे में नहीं सुनाई पड़ी। मीडिया की प्राथमिकता से डरबन प्लेटफॉर्म एक सिरे से गायब रहा।

डरबन प्लेटफॉर्म जलवायु परिवर्तन की समस्या से सम्बंधित है। इस प्लेटफार्म ने पहली बार इस समस्या को वैश्विक स्वीकार्यता प्रदान की है और इस समस्या से लड़ने के लिए वैश्विक सहभागिता का एक मंच भी उपलब्ध कराया है। दरअसल, पिछले दो दशकों से जलवायु परिवर्तन की पर्यावरणीय समस्या मानव अस्तित्व के समक्ष सबसे बड़े संकट के रूप में उभरी हैं। इस समस्या के समाधान के लिए वैश्विक स्तर पर एक बाध्यकारी प्रारूप तैयार करने के लिए प्रयास किए जा रहे थे। 1997 की क्योटो संधि इस समस्या के समाधान की दिशा में बढ़ाया गया पहला कदम था। यह संधि 16 फरवरी 2005 को प्रभावी हुई। इसमें यह प्रावधान किया गया था कि प्रमुख कार्बन डाई ऑक्साईड उत्सर्जक देश 2008 से 2012 के बीच इस गैस का उत्सर्जन घटाकर 1990 के उत्सर्जन स्तर से 5 फीसदी नीचे लाएंगे। अमेरिका और आस्ट्रेलिया जैसे प्रमुख उत्सर्जक देशों ने इस संधि को अपनी अर्थव्यवस्था के लिए घातक बताकर इसको स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इन विकसित देशों का तर्क था कि भारत और चीन जैसी उभरती व्यवस्थाओं पर भी क्योटो संधि के प्रावधान समान रूप से लागू किए जाने चाहिए। यह देश प्रति व्यक्ति उत्सर्जन की बजाय किसी देश द्वारा किए जा रहे सम्पूर्ण उत्सर्जन के आधार पर मसौदे के प्रावधान लागू करने की वकालत कर रहे थे। दूसरी तरफ भारत, चीन और ब्राजील जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाएं विकासशील देशों पर विकसित देशों की तरह पर्यावरणीय प्रतिबंध नहीं लगाए जाने के पक्ष में नहीं थी। इन देशों का तर्क था कि विशाल जनसंख्या के कारण विकासशील देशों का सम्पूर्ण उत्सर्जन अधिक हो सकता है, लेकिन प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन कम है। इसलिए किसी भी मसौदे के बाध्यकारी प्रावधान सम्पूर्ण उत्सर्जन की बजाय प्रति व्यक्ति उत्सर्जन पर आधारित होने चाहिए। उदाहरण के लिए चीन पिछले पांच सालों में अमेरिका को पछाड़ते हुए दुनिया का सबसे बड़ा उत्सर्जक देश बन गया है, परन्तु वहां पर अब भी प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन बहुत कम है। चीन विश्व के कुल कार्बन उत्सर्जन का 24 फीसदी हिस्सा उत्सर्जित करता है लेकिन उसका प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जन मात्र 6 टन है। दूसरी तरफ अमेरिका विश्व का 18 फीसदी कार्बन उत्सर्जित करता है लेकिन वहां प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जन 18 टन है। भारत दोनों पैमानों पर अब भी बहुत पीछे है। भारत विश्व का लगभग 6 फीसदी कार्बन उत्सर्जित करता है और यहां पर प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन लगभग 1.40 टन है।

विकसित और उभरती अर्थव्यवस्थाओं के बीच इसी खींचतान के कारण जलवायु परिवर्तन की समस्या से लड़ने के लिए कोई वैश्विक बाध्यकारी मसौदा नहीं निर्मित हो पा रहा था। आईपीसीसी की जलवायु परिवर्तन सम्बंधी चौथी रिपोर्ट आने के बाद पूरी दुनिया में जलवायु परिवर्तन की समस्या को लेकर नई बहस छिड़ी। इस रिपोर्ट में जलवायु परिवर्तन की भयावह तस्वीर पेश की गयी थी और यह भी कहा गया था कि यदि कार्बन उत्सर्जन को कम करने के लिए जल्दी कुछ नहीं किया गया तो जल्द ही जलवायु परिवर्तन अनुत्क्रमणीय दशा में पहुंच जाएगा। ऐसी स्थिति में संभावित खतरों को रोक पाना असंभव हो जाएगा। एक सर्वस्वीकृत बाध्यकारी मसौदे के निर्माण के लिए समय

का दबाव इसलिए भी बढ़ता जा रहा था क्योंकि क्योटो संधि की समयावधि 2012 में खत्म होने वाली थी।

क्योटो संधि का स्थान लेने वाले नवीन सर्वस्वीकृत वैश्विक मसौदे के निर्माण के लिए पिछले 4 वर्षों से संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन आयोजित किए जा रहे थे। दिसम्बर महीने में आयोजित होने वाला यह सम्मेलन अब तक 2007 में बाली में, 2008 में पोजनान में, 2009 में कोपनहेगन में और 2010 में कानकुन में आयोजित किए जा चुके थे। पर्यावरणविदों और पर्यावरणमंत्रियों के इस वैश्विक जमघट में कोई सफलता हाथ नहीं लगी थी। 11 दिसम्बर 2011 में डरबन में आयोजित सम्मेलन में अंततः सफलता हाथ लगी। विश्व के सभी देशों के बीच एक नवीन वैश्विक बाध्यकारी समझौते पर सहमति बन गयी, जिसे डरबन प्लेटफॉर्म का नाम दिया गया। इस समझौते की सभी शर्तों को अभी मूर्त रूप नहीं दिया जा सका है। समझौता शर्तें 2015 से 2020 के बीच निर्धारित की जाएंगी और यह समझौता 2020 से बाध्यकारी कानून के रूप में अस्तित्व में आ जाएगा।

डरबन प्लेटफॉर्म की सर्वाधिक खास बात यह है कि इसके प्रावधान विकसित और विकासशील देशों पर समान रूप से प्रभावी होंगे। यह इस समझौते का सबसे रहस्यात्मक बिंदू भी है। भारत, चीन जैसे विकासशील देशों और अमेरिका, कनाडा जैसे विकसित देशों के बीच यह सहमति किस आधार पर बनी है, यह अब भी रहस्य का विषय बना हुआ है। भारत की पर्यावरण मंत्री जयंती नटराजन विकसित देशों का विरोध करते करते सम्मेलन के अंतिम दिन यकायक समझौते के लिए किन शर्तों पर राजी हो गयीं, इसके बारे में अधिक जानकारी नहीं है। मीडिया तो इस पर पूरी तरह से मौन है। भारत को इस समझौते से क्या मिलने वाला है और भारत का क्या दांव पर लगाया गया है, इसके बारे में सरकारी तंत्र कुछ नहीं बता रहा है। चौथा खंभा मूर्ती की मुद्रा में आ गया है। इसमें कोई दो राय नहीं कि डरबन प्लेटफॉर्म भी डंकल प्रस्ताव की तरह भारत के भविष्य को निर्णायक रूप से प्रभावित करेगा। उस समय भी रहस्यात्मक स्थितियों में समझौता किया गया था और आज भी। डंकल प्रस्ताव की कीमत अभी तक 2.5 लाख किसान अपनी जान देकर चुका रहे हैं। डरबन प्लेटफॉर्म की कीमत का अंदाजा लगाने के तथ्यों का नितांत अभाव है।

मनोरंजन के मुद्दे पर मीडिया गला फाड़ के चिल्ला रहा है और अस्तित्व के मुद्दे पर रहस्यमयी चुप्पी साध रखी है। मीडिया की प्राथमिकताओं में व्याप्त इस विकृति को देखकर हिन्दीभाषी क्षेत्रों में विकृत प्राथमिकताओं को लेकर कही जाने वाली एक बहुत ही सुंदर लोककथा की याद आ जाती है। कथा के अनुसार भुखमरी का शिकार एक व्यक्ति एक दुकानदार से गिड़गिड़ाकर अनाज उधार देने की विनती करता है। वह व्यक्ति कहता है कि उसकी जेब में फूटी कौड़ी नहीं हैं और उसके बच्चें भी कई दिनों से भूखे हैं। अनाज नहीं दिया तो मेरा पूरा परिवार खाए बिना मर जाएगा। उसकी फटेहाल स्थिति देखकर दुकानदार का दिल पसीज गया और उसने महीने भर का 'राशन–पानी' उस व्यक्ति को देते हुए चेतावनी दी कि उधारी के तीन रुपयों का चुकता अगली पूर्णिमा तक हो जाना चाहिए। उस व्यक्ति ने आभार जताते हुए अगली पूर्णिमा तक पाई–पाई चुकता कर देने का आश्वासन दिया। वह बेबस व्यक्ति अनाज लेकर चलने लगा तो दुकानदार को याद आया कि गांव में बंगाली जादूगर आया है। वह हैरतअंगेज कारनामे दिखाकर लोगों का मनोरंजन करता है। जादूगरी के कार्यक्रम को देखने के इच्छुक लोगों के लिए उसने आठ आने का प्रवेश शुल्क लगा रखा था। दुकानदार के दिल में पता नहीं कहां से दया के अंकुर फूट आए। उसने आठ आने का सिक्का उस व्यक्ति की तरफ बढ़ाते हुए कहा कि जादूगरी का खेल जरूर देख लेना। ऐसा सिद्धहस्त जादूगर गांव में बार–बार नहीं आता। उस बेबस ने आठ आने का सिक्का अपने हाथों में थाम लिया। जादूगरी की बात सुनते ही वह अपना दुःख दर्द भूल गया। उसकी आंखों में एकदम से चमक आ गयी। उसने उत्साहपूर्वक अपनी योजना का खुलासा करते हुए कहा कि इस महाअवसर के प्रति मैं भी पूरी तरह जागरूक हूं। मुझको बहुत पहले ही पता चल गया था कि यह जादूगर हमारे गांव में आने वाला है। इसीलिए मैंने अपनी मजदूरी के तीन रुपए अपने आठ सदस्यीय परिवार को 'तमाशा' दिखाने के लिए बचाकर रख लिए थे। मेरा पूरा परिवार पिछले चार दिनों से भूखा है लेकिन मैंने उन तीन रुपयों में से एक पाई भी नहीं खर्च किया और आज जब मुझसे परिवार की हालत नहीं देखी गयी तो मैं आपसे उधार मांगने आ गया। आखिर ऐसी जादूगरी देखने का मौका बार बार थोड़े ही आता है, खाना–पीना तो जिंदगी भर लगा रहता है।

आज का मीडिया भी कुछ इसी तरह अपनी विश्वसनीयता की कीमत पर मनोरंजक कार्यक्रम परोस रहा है। छिछले मुद्दे उठा रहा है। विद्या बालन किस फिल्म में 'सेक्सी' भूमिका छोड़कर 'चंडिका' की भूमिका में नजर आएंगी, इस पर प्रतिदिन विचार करने से कितने लोगों की रोटी–दाल प्रभावित होने वाली है। हैरत तब होती है जब इस समाचार को भी अंतर्राष्ट्रीय पृष्ठ पर तीन कॉलम का 'स्पेस' मिल जाता है। जबकि दोहा दौर की वार्ता और किसान सब्सिडी का मुद्दा अंतर्राष्ट्रीय पृष्ठ की खबर नहीं बना पाता।

मीडिया को अपनी प्राथमिकता सूची की पुनर्संरचना के लिए पहल करनी चाहिए। अन्यथा अस्तित्वगत मुद्दों के प्रति यह लापरवाही मीडिया से उसका स्वतंत्र अस्तित्व छीन लेगी। वह बाजार का खिलौना और राजनीति का एक मोहरा मात्र बनकर रह जाएगी। ■

शिक्षा प्रचार का साधन हैं समाचार पत्र– महावीर प्रसाद द्विवेदी

सूर्यप्रकाश

हिन्दी पत्रकारिता का प्रारंभिक काल भारतीय नवजागरण अथवा पुनर्जागरण का काल था। उस दौरान भारत की राष्ट्रीय, जातीय व भाषायी चेतना जागृत हो रही थी। इस दौर की पत्रकारिता एक मिशन के तौर पर काम कर रही थी। उस दौर के पत्रकारों ने पत्रकारिता के क्षेत्र में जो आयाम और आदर्श स्थापित किए, वे आज भी पत्रकारिता की उदीयमान पीढ़ी के लिए मार्गदर्शन का स्त्रोत हैं। ऐसे ही एक पत्रकार थे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, जिन्हें हिन्दी पत्रकारिता जगत में संपादकों का आचार्य भी कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। गणेश शंकर विद्यार्थी और बाबूराव विष्णु पराड़कर जैसे पत्रकार भी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा की उपज थे।

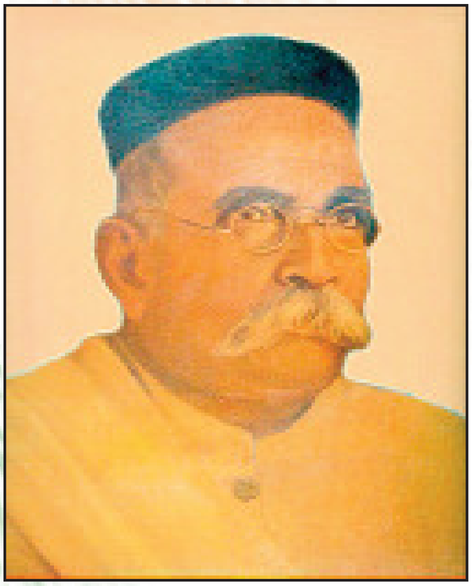

महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रकारिता और उनकी संपादन शैली के बारे में जानने के लिए बाबूराव विष्णु पराड़कर की निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं– ''सन 1906 से, जब मैंने स्वयं पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, प्रति मास सरस्वती का अध्ययन मेरा एक कर्तव्य हो गया। मैं सरस्वती देखा करता था संपादन सीखने के लिए।''

द्विवेदी जी ने हिन्दी पत्रकारिता में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया, वे सदैव नवोदित पत्रकारों को मार्गदर्शन देते रहे। हिन्दी पत्रकारिता और हिन्दी भाषा की प्रगति को लेकर आचार्य द्विवेदी जी जीवन पर्यंत प्रयास करते रहे। हिन्दी के पत्रों की कम होती संख्या पर चिंता व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है– ''हमारे प्रान्त की मातृभाषा हिन्दी ही है। परन्तु स्वदेश और स्वभाषा के शत्रु उसे अस्पृश्य और अपाठ्य समझते हैं। इसी से उर्दू के पत्रों की अपेक्षा हिन्दी के पत्रों की संख्या आधे से भी कम रही। मातृभाषा के इन द्रोहियों की बुद्धि भगवान ठिकाने लावें, इनमें से पांच फीसदी अंग्रेजी के धुरंधर पंडित जरूर होंगे। इन्हें रोज पायनियर और इंगलिशमैन पढ़े बिना कल नहीं पड़ती। इनकी शिकायत है कि हिन्दी में कोई अच्छा पत्र है ही नहीं, पढ़ें क्या? पर इनको यह नहीं सूझता कि अच्छे हिन्दी पत्र निकालने वाले क्या किसी और लोक से आवेंगे। या तो तुम खुद निकालो, या औरों के पत्र लेकर उन्हें उत्साहित करो, या अच्छे पत्र निकालने वालों की मदद करो। सिर्फ प्रलाप करने से हिन्दी के अच्छे पत्र पैदा नहीं हो सकते।'' (सरस्वती, मई 1908, पृ. 194)

हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए उन्होंने हिंदुओं से आह्वान करते हुए कहा– ''यह इन प्रांतों के साहित्य की दशा है। मुसलमान तो हाईकोर्ट के जज हो जाने पर भी उर्दू में पुस्तकें लिखने का कष्ट उठावें, पर हिन्दू बेकार बैठने को ही अपने कर्तव्य की चरम सीमा समझें, या यदि लिखें भी तो हिन्दी को छोड़कर अन्य किसी भाषा में। फिर भला हिन्दी की उन्नति हो कैसे।'' (सरस्वती, मार्च 1912, पृ. 171)

द्विवेदी जी की पत्रिका सरस्वती से ही हिन्दी पत्रकारिता में शीर्ष स्थान रखने वाले संपादकों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया था। सीखने की प्रवृत्ति रखने वाले पत्रकारों का द्विवेदी जी सदा ही प्रोत्साहन करते थे। उनका मानना था कि हमें सर्वज्ञता का घमंड नहीं होना चाहिए और हमें अपने लिखे हुए में परिशोधन एवं संशोधन को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। लेखों के पुनर्शोधन में उनका स्पष्ट मत था कि–

''अपना लिखा सभी को अच्छा लगता है, परंतु उसके अच्छे–बुरे का विचार दूसरे ही कर सकते हैं। जो लेख हमने लौटाये, वे समझ–बूझकर हमने लौटाये, किसी और कारण से नहीं। अतएव यदि उसमें किसी को बुरा लगा तो हमको खेद है। यदि हमारी बुद्धि के अनुसार लेख हमारे पास आवें तो हम उन्हें क्यों लौटावें? उनको हम सादर स्वीकार करें, भेजने वाले को भी धन्यवाद दें और उसके साथ ही यदि हो सके तो कुछ पुरस्कार भी दें।''

''यदि किसी को सर्वज्ञता का घमण्ड नहीं है, तो वह अपने लेख में दूसरे के किए हुए परिशोधन को देखकर कदापि रूष्ट न होगा। लेखक अपने लेख का प्रूफ स्वयं शोध सकता है, और संशोधन के समय हमारे किए हुए परिवर्तन यदि उसे ठीक न जान पड़े, तो हमको सूचना देकर, वह उनको अपने मनोनुकूल बना सकता है''

समाचार पत्र जनसूचना का ही नहीं बल्कि जनशिक्षण और जनजागरण का भी महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। समाचार पत्रों की संख्या में बढ़ोत्तरी के संदर्भ में उनका कहना था कि– ''समाचार पत्र शिक्षाप्रचार का प्रधान साधन है। जिस देश में जितने ही अधिक पत्र हों, उसको उतनी ही अधिक जागृत अवस्था में समझना चाहिए।''

आचार्य द्विवेदी जी ने हिन्दी पत्रकारिता को साहित्य के सरोकारों से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उनके संपादन में निकलने वाली 'सरस्वती पत्रिका' का हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी देश और जाति की उन्नति के बारे में यदि जानना हो तो उस देश का साहित्य वहां की स्थिति को बयान करता है। इस संदर्भ में दिसंबर 1917 के अंक में द्विवेदी जी ने लिखा है– ''साहित्य ही ज्ञान और बोध का भंडार है। जिस जाति का साहित्य नहीं उस जाति की उन्नति नहीं हो सकती। क्योंकि जहां साहित्य नहीं वहां पूर्व प्राप्त ज्ञान भी नहीं और जहां पूर्व प्राप्त ज्ञान नहीं वहां उन्नति कैसी।''

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में जो मानदंड स्थापित किए, वे आज भी प्रासंगिक और अनुकरणीय हैं। पत्रकारिता के वर्तमान दौर में जब साहित्यिक पत्रकारिता का स्थान पत्रकारिता के क्षेत्र में सिमटता जा रहा है, ऐसे समय में आचार्य जी की स्मृतियां जीवंत हो उठती हैं। ■

पंचायती राज से रूबरू नहीं है मीडिया – श्रीपाल जैन

पंचायतों को लेकर मीडिया अक्सर भ्रष्टाचार, सरपंच की हत्या, मारपीट व रेप जैसी खबरों का ही प्रसारण करता है, जबकि पंचायती राज से समाज में कुछ सकारात्मक बदलाव भी आए हैं। पत्रकारिता के वर्तमान दौर को लेकर पंचायती राज के संपादक श्रीपाल जैन से बातचीत के कुछ अंश :

पत्रकारिता के क्षेत्र में आपका आगमन कैसे हुआ?

उदयपुर से जब मैं पीएचडी कर रहा था तो मैं दैनिक हिन्दुस्तान, दिनमान, धर्मयुग जैसे अखबारों में लिखता रहता था। 1981 में मैंने हिन्दुस्तान में उप संपादक के पद पर कार्यभार संभाला। उस समय मुझे पत्रकारिता व लैक्चरर में से किसी एक विकल्प को चुनना था। दिल्ली का एक आकर्षण होने के कारण मैंने पत्रकारिता को चुना। हिन्दुस्तान में मैंने सहायक संपादक और वरिष्ठ सहायक संपादक के पद पर कार्य किया। वर्ष 2008 में मैंने पंचायती राज पत्रिका में संपादक का पद संभाला।

पत्रकारिता के दौरान आपके क्या रोचक अनुभव रहे?

पत्रकारिता के दौरान मेरे दो रोचक अनुभव रहे। शेख अब्दुल्ला जब बीमार चल रहे थे तो हिन्दुस्तान के संपादकीय पृष्ठ पर उनके उत्तराधिकारी को लेकर एक लेख जा रहा था। रात 1 बजे के करीब खबर आई कि उनका निधन हो गया। उस समय कई संस्करण जा चुके थे लेकिन दिल्ली के लिए जो संस्करण जा रहा था उसमें मैंने उस लेख को थोड़ा सा बदल दिया। उसके अगले दिन मुझे और मेरे साथियों को सराहना पत्र दिया गया। दूसरा अनुभव था कि एक दिन नाइट शिफ्ट के दौरान राजनीतिक विषय पर एक लीड बनी हुई थी। करीब पौने दो बजे खबर आई कि सलमान रूश्दी के खिलाफ अयातुल्लाह खुमैनी ने मौत का फतवा जारी कर दिया है। मैंने पहली वाली लीड खबर को नीचे करके इस खबर को लीड बना दिया जिसके लिए संपादक ने अगले दिन मेरी सराहना की।

वर्तमान पत्रकारिता के दौर में आप क्या परिवर्तन देखते हैं?

पत्रकारिता के क्षेत्र में तीन स्तर पर परिवर्तन आए हैं। पहला विषय वस्तु, दूसरा प्रस्तुतीकरण और तीसरा साधनों के स्तर पर परिवर्तन आया है। विषयवस्तु के स्तर पर देखा जाए तो आज बॉलीवुड, ब्यूटी और फैशन का आवश्यकता से अधिक कवरेज बढ़ गया है। इसके अलावा आर्थिक विषयों का भी कवरेज बहुत बढ़ गया है। कभी–कभी तो कंपनियों की तिमाही रिपोर्ट ही पहले पेज पर लगा दी जाती है, विशेषकर अंग्रेजी अखबारों में। इन सबके कारण मध्य वर्ग और उच्च मध्य वर्ग का कवरेज अधिक बढ़ गया है और निम्न वर्ग जैसे किसान, मजदूर व आम आदमी के मुद्दों को उठाने वाली ग्राम पंचायतों का कवरेज घट गया है। अंग्रेजी अखबारों में तो ग्राम पंचायतों का जिक्र तक नहीं होता। दूसरा साज सज्जा के आधार पर भी परिवर्तन आया है। आज खबरों के साथ हाईलाइटर, आकर्षक चार्ट व मैप देने का चलन बढ़ गया है जो सराहनीय है। लेकिन आज अखबारों में आर्टिस्टों की जगह डिजाइनरों ने ले ली है जिसके कारण कार्टूनिस्ट का पतन हुआ है। खबरों के प्रस्तुतीकरण के आधार पर भी परिवर्तन हुआ है। आज स्टोरी को मुहावरों व दमदार अंदाज में प्रस्तुत किया जा रहा है लेकिन खबरें संक्षिप्तीकरण से ग्रस्त होती जा रही है जिसका कारण विज्ञापन है।

पंचायती राज से क्या समाज में कुछ परिवर्तन आ रहे हैं?

पंचायती राज से समाज में दो ढंग के परिवर्तन आ रहे हैं। एक तो महिला सशक्तिकरण का सिलसिला बढ़ा है। आज देश के 12 राज्यों में 50 प्रतिशत महिला आरक्षण है। करीब 30 लाख प्रतिनिधियों में 13–14 लाख महिलाएं हैं। वहीं स्थानीय स्तर पर महिलाओं के राजनीति में आने से राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर राजनीति के द्वार खुलते हैं। दूसरा, 73 और 74 संवैधानिक सुधार के बाद केन्द्र व राज्य सरकार की कल्याणकारी योजनाओं की राशि सीधा पंचायतों के खातें में जा रही है। पहले यह राशि नौकरशाहों के पास जाती थी। इससे नौकरशाहों का भ्रष्टाचार कम हुआ है लेकिन राजनीतिक भ्रष्टाचार भी बढ़ा है। कई मामलों में तो यह भी देखा गया है कि नौकरशाह व निर्वाचित प्रतिनिध मिलकर भ्रष्टाचार कर रहे हैं।

पंचायती राज पर मुख्यधारा की मीडिया का क्या रूख है?

मुख्यधारा की मीडिया पंचायती राज को अधिक कवर ही नहीं करता और स्थानीय मीडिया कवर करता भी है तो वह भ्रष्टाचार, मारपीट, सरपंच की हत्या, सरपंच द्वारा रेप, रिश्वत लेना जैसी खबरें देता है। मीडिया को पंचायती राज के बारे में ज्यादा जानकारी ही नहीं है कि पंचायती राज कार्य कैसे करता है। पंचायतों को लेकर मीडिया के पास अच्छी जानकारी नहीं है।

प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में से कौन पत्रकारीय मूल्यों को बेहतर तरीके से निभा पा रहा है?

तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो प्रिंट मीडिया ज्यादा विश्वसनीय है। लेकिन दोनों ही मीडिया आंशिक या पूर्ण रूप से एकपक्षीय होते जा रहे हैं। पत्रकारों की राजनेताओं से निकटता होती है। आज पत्रकार इस निकटता का प्रयोग धन कमाने में कर रहा है। पहले यह खाना खिलाने या डायरी देने तक ही सीमित था लेकिन राजनेताओं से निकटता के कारण आज पत्रकार कई काम करा लेता है। इसका इतना बुरा प्रभाव पड़ रहा है कि कई बार राजनेताओं के खिलाफ खबर छपती भी नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की रिपोर्टिंग के बारे में आपका क्या मत है? क्या आप इससे संतुष्ट हैं?

अखबारों में अंतर्राष्ट्रीय समाचारों का कवरेज घटा है और इसके स्पष्ट कारण है। एक तो जबसे संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन का उदय हुआ है, राजनीतिक उथल–पुथल ज्यादा होती रही है। इस उथल–पुथल के पीछे की राजनीति और इस उथल–पुथल के कारणों पर पत्रकार टिप्पणी करने लगे हैं। इससे संबंधित खबरें जा रही हैं। वहीं भ्रष्टाचार, रेप, अपराध जैसी खबरें इतनी बढ़ गई है कि अंतर्राष्ट्रीय खबरों का कवरेज कम हो रहा है। दूसरा अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर देखें तो अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर समस्याएं कम हुई है। सोवियत संघ के पराभव के बाद दुनिया बहुध्रुवीय हो गई है। चीन, भारत, ब्राजील जैसे देशों का उदय हो रहा है। आज युद्ध का दायरा भी सिमट गया है। आज युद्ध के मृतकों की संख्या 90 प्रतिशत तक कम हो गई है। इसके कारण भी कवरेज कम हो रहा है।

आज अफगानिस्तान, पाकिस्तान, मध्यपूर्व, अफ्रीका, अमेरिका में जो संघर्ष चल रहे हैं, उसको लेकर क्या भारतीय मीडिया पश्चिमी नजरिए से देखना चाहती है?

यह बात काफी हद तक सही है। हम पहले भी पश्चिमी नजरिए से देखते थे। वामपंथी नजरिए से भी देखने वाले लोग थे, लेकिन उनकी संख्या काफी कम थी। वैश्वीकरण के दौर में हम पश्चिमी देशों के बहुत नजदीक आए। इस कारण हमारा नजरिया पश्चिम के नजरिए से ही देखने का रहा है। हालांकि यह संतुलित नजरिया नहीं कहा जा सकता क्योंकि आज पश्चिम में ही वैश्वीकरण का विरोध हो रहा है। विश्व बैंक ने भी माना है कि अति उदारीकरण से स्थिति खराब भी हो सकती है।

आर्थिक पत्रकारिता पर मीडिया का क्या रूख है?

मीडिया का रूख बहुत दुर्भाग्यशाली है। मीडिया में आर्थिक मामलों की समझ रखने वाले बहुत कम लोग हैं। जबकि यह ट्रेनिंग के स्तर पर होना चाहिए। उप संपादकों, पत्रकारों को अर्थव्यवस्था संबंधी अच्छी जानकारी दी जानी चाहिए।

वर्तमान दौर में राजनीतिक पत्रकारिता पर आपकी क्या राय है?

राजनीति के क्षेत्र में खोजी पत्रकारिता बढ़ी है, लेकिन कई बार खबरें एकपक्षीय होती है। सामान्य तौर पर कहा जाता है कि पत्रकार बिक जाता है और यह सिलसिला निश्चित रूप से ज्यादा ही बढ़ा है। दूसरी ओर राजनीतिक पत्रकारिता को अधिक महत्व देने से दूसरी खबरें घटी है। आम आदमी की चुनौतियों और समस्याओं की खबरें कम जाती है।

आज मीडिया के संपादकीय पृष्ठ का ढांचा पूरी तरह से बदल गया है। इस पर आपकी क्या टिप्पणी है?

इसको दो स्तर पर देखा जा सकता है हिन्दी और अंग्रेजी समाचार पत्र। अंग्रेजी समाचार पत्र के संपादकीय पृष्ठ पर अधिकतर लेख विशेषज्ञों और विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों द्वारा लिखे जा रहे हैं। उनकी भाषा शैली ऐसी होती है जिसे आम लोगों को समझने में कठिनाई होती है। हिन्दी में भी यही परंपरा चल रही है कि विशेषज्ञ ही लिखेंगे। वह ज्यादा मेहनत करके नहीं लिखते और अधिकतर अनुवादित ही होता है। यह कार्य इतनी जल्दी होता है कि कई बार वाक्य संरचना में भी गड़बड़ हो जाती है। इस प्रकार भाषा की दृष्टि से वह ऊबऊ होते है और उसका एक सही अर्थ नहीं निकलता। अतः इसके लिए जरूरी नहीं है कि नामी विशेषज्ञों से लिखवाया जाए। थोड़ा छोटे स्तर के लेखकों से भी लिखवाना चाहिए और लेखकों के बीच प्रतिस्पर्धा कायम रखनी चाहिए।

कई बार नॉन ईश्यूज पर भी लिखा जाता है। इस पर आपकी क्या राय है?

यह भी सही बात है कि कई बार नॉन ईश्यूज पर लिखा जा रहा है जैसे मसलन जलवायु परिवर्तन। जलवायु परिवर्तन एक हकीकत है और एक हाईप भी है। इसी प्रकार एड्स को लेकर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कहा था कि भारत में 50 लाख लोग एचआईवी पॉजिटीव है और 10 साल बाद के आंकड़ें 25 लाख बताए गए। इस प्रकार एड्स को लेकर हाइप बना दिया गया। देव आनंद के निधन पर भी यही स्थिति देखने को मिली। निश्चित रूप से वह देश के बड़े कलाकार थे लेकिन उनको लेकर अखबारों के पेज भर दिए गए।

आमतौर पर कहा जाता है कि मीडिया से आम आदमी के मुद्दें गायब होते जा रहे हैं। क्या आप इससे सहमत हैं?

निश्चित रूप से मीडिया से आम आदमी के मुद्दें गायब होते जा रहे हैं क्योंकि भारत वर्ष में दो चीजें बहुत महंगी हो गई है। पहली शिक्षा और दूसरा स्वास्थ्य। यह गरीबों की पहुंच से बाहर हो गए हैं। वहीं शिक्षा में कैसे माफिया काम कर रहा है, आज तक मीडिया ने इसे हाईलाइट नहीं किया और स्वास्थ्य में कितनी नकली दवाएं आ रही हैं व स्वास्थ्यकर्मी कितने अनुशासन में रहते हैं, इस बारे में भी अधिक कवरेज नहीं होता। जबकि मानव विकास सूचकांक में भारत बहुत पीछे चल रहा है। इसके आधारभूत तत्वों में स्वास्थ्य और शिक्षा भी शामिल है। आज बांग्लादेश हमसे स्वास्थ्य में और श्रीलंका हमसे शिक्षा में आगे बढ़ रहा है।

मीडिया पर उठ रहे सवालिया निशानों को मद्देनजर रखते हुए क्या मीडिया पर निगरानी आवश्यक है?

मीडिया की निगरानी अति होने पर आवश्यक है। वैसे मीडिया को आत्मनियंत्रक होना चाहिए। लेकिन अगर ऐसा नहीं है तो एक न एक दिन ऐसी स्थिति आ सकती है।

क्या मीडिया को लोकपाल के दायरे में लाना चाहिए?

बिल्कुल, मीडिया को लोकपाल के दायरे में लाना चाहिए। कई बार मीडिया गैर जिम्मेदारपूर्ण आचरण करता है, चाहे वह मालिक के कारण हो, संपादक के कारण हो या किसी लालच में हो।

आम लोगों की नजरों में मीडिया का स्तर जो गिर गया है, उसके लिए क्या प्रयास किए जाने चाहिए?

इसके लिए तीन स्तरों पर प्रयत्न किए जाने चाहिए। पहला, सरकार और अदालत के स्तर पर प्रयास होना चाहिए। मीडिया में अगर अपमानजनक और गलत खबर छपी तो उसके लिए मीडिया के संबन्धित व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जाए और उस पर दोषसिद्धि करके सजा दी जाए। यह सजा आर्थिक भी हो सकती है। दूसरा, खुद मीडिया के लोगों को आत्ममंथन करना चाहिए। तीसरे स्तर पर प्रबंधन है। मीडिया के प्रबंधकों को प्रशिक्षण पर ध्यान देने के लिए कदम उठाने चाहिए।

(प्रस्तुति : नेहा जैन) ■

साहित्यिक पत्रकारिता के स्तंभ– शिवपूजन सहाय

हिंदी साहित्यकारों ने समय–समय पर हिंदी पत्रकारिता में अपना योगदान दिया है। साहित्यकारों के मार्गदर्शन में पत्रकारिता ने भी नई ऊंचाईयों को प्राप्त किया है। साहित्य और पत्रकारिता का जब सम्मिश्रण होता है, तब पत्रकारिता सूचना ही नहीं जनशिक्षण और सांस्कृतिक उत्थान का भी माध्यम बनकर उभरती है। हिंदी साहित्यकारों का हिंदी पत्रकारिता से पुराना नाता रहा है जैसे भारतेंदु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, मुंशी प्रेमचंद, माधवराव सप्रे एवं आचार्य शिपूजन सहाय आदि।

आचार्य शिवपूजन सहाय की बात की जाए तो पत्रकारिता के क्षेत्र में वे साहित्यिक सरोकारों को पत्रकारिता से जोड़ने के लिए जाने जाते हैं। पत्रकारिता की विधा से जब साहित्य जुड़ता है, तो पत्रकारिता भाषा के स्तर पर समृद्ध होती है और सामाजिक सरोकारों से भी सहज रूप से जुड़ जाती है। आचार्य शिवपूजन सहाय ने इस कार्य को भली–भांति अंजाम दिया। 9 अगस्त, 1893 को बिहार के शाहाबाद जिले में जन्मे शिवपूजन सहाय ने पत्रकारिता को खासतौर से साहित्यिक पत्रकारिता को एक दिशा प्रदान की। शिवपूजन सहाय छात्रजीवन से ही पत्रकारिता से जुड़ गए थे, उनके लेख 'शिक्षा', 'मनोरंजन', और 'पाटलिपुत्र' जैसे पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे थे।

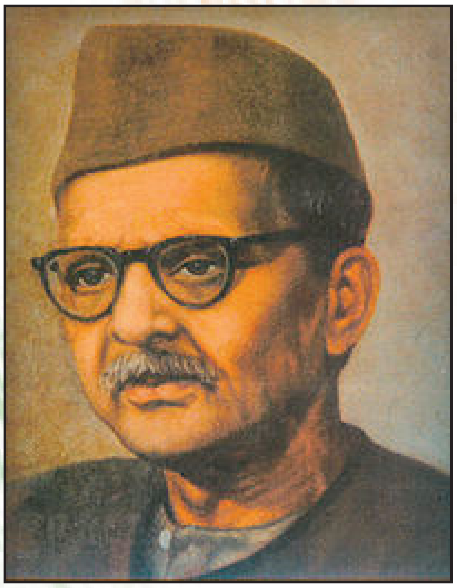

सहाय जी का समय वह समय था जब भारत अंग्रेजी दासता से मुक्ति के लिए संघर्षरत था। ऐसे समय में शिवपूजन सहाय जैसे व्यक्तित्व का स्वाधीनता आंदोलन के संग्राम से जुड़ना स्वाभाविक ही था। गांधी जी के असहयोग आंदोलन में सहभागिता के लिए वे सरकारी नौकरी को छोड़कर आरा के स्कूल में शिक्षक के रूप में कार्य करने लगे। लेकिन सहाय जी का पत्रकार मन पत्रकारिता से जुड़ने के लिए व्याकुल था, अतः आरा से ही उन्होंने 1921 में 'मारवाड़ी सुधार' मासिक पत्रिका का संपादन प्रारंभ किया। इसके पश्चात वे 20 अगस्त, सन 1923 में कोलकाता से प्रकाशित होने वाले 'मतवाला' से जुड़ गए। शिवपूजन जी 'मतवाला' के संस्थापक सदस्यों में से एक थे। इस पत्र में कार्य करने के दौरान उनको महान साहित्यकार और पत्रकार सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का भी सहयोग प्राप्त हुआ। 'मतवाला' को मूर्त रूप देने में शिवपूजन सहाय की प्रमुख भूमिका रही थी। 'मतवाला' छपकर बाजार में आया तो धूम मच गई।

'मतवाला' ने जबरदस्त लोकप्रियता प्राप्त की। साहित्य, समाज, संस्कृति, राजनीति, शासन, धर्म आदि सभी विषयों पर मतवाला में लेख और समाचार प्रकाशित होते थे। यह पत्र वैचारिक रूप से लोकमान्य तिलक से प्रभावित रहा। साथ ही 'मतवाला' को गांधी के साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन में भी गहरी आस्था थी। 'मतवाला' के संपादन के अलावा उन्होंने 'मौजी', 'आदर्श', 'गोलमाल', 'उपन्यास तरंग' और 'समन्वय' जैसे पत्रों के संपादन में भी सहयोग किया। कुछ समय के लिए सन 1925 में आचार्य सहाय ने 'माधुरी' का भी संपादन किया। इसके पश्चात सन 1926 में वे पुनः 'मतवाला' से जुड़ गए।

शिवपूजन सहाय ने भागलपुर के सुलतानगंज से छपने वाली साहित्यिक पत्रिका 'गंगा' का भी संपादन किया। इसके अलावा उन्होंने पुस्तक भंडार पटना के साहित्यिक पत्र 'हिमालय' का भी संपादन किया। सन 1950 में बिहार सरकार द्वारा गठित बिहार राष्ट्रभाषा परिषद का पहला निदेशक सहाय जी को ही चुना गया था। सन 1950 में ही बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की त्रैमासिक शोध पत्रिका 'साहित्य' के संपादन की जिम्मेदारी भी सहाय जी को ही मिली थी। सहाय जी ने विभिन्न साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं के संपादन के माध्यम से साहित्यिक पत्रकारिता को अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

आचार्य शिवपूजन सहाय हिंदी की उन्नति के लिए सदैव चिंतित रहे। उन्होंने कहा– ''हम सब हिंदी भक्तों को मिलकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि साहित्य के अविकसित अंगों की भली–भांति पुष्टि हो और अहिंदी भाषियों की मनोवृत्ति हिंदी के अनुकूल हो जाए।''

शिवपूजन सहाय की संपादन कला की एक बानगी यह भी है कि भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा का संपादन भी उन्होंने ही किया था। राजेन्द्र प्रसाद ने उनकी प्रशंसा इन शब्दों में की थी– ''जेल से निकलने पर इतना समय नहीं मिला कि इसे दोहराऊं। यह शिवजी (शिवपूजन सहाय) की कृपा का फल था कि वह प्रकाश में आ सकी। अत्यन्त अपनेपन से उन्होंने हस्तलिखित प्रति ले ली और बहुत परिश्रम करके उसे पढ़ा ही नहीं बल्कि जहां–तहां लिखने में जो भूले रह गईं थीं उनको भी सुधारा। शिवजी की इस प्रेमपूर्ण सहायता की जितनी भी प्रशंसा करूं, थोड़ी है।''

साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में सहाय जी ने जो भी कार्य किया, वह सराहनीय रहा। हिंदी भाषा और साहित्यिक पत्रकारिता में उनका योगदान मील का पत्थर साबित हुआ। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के निदेशक के पद पर रहते हुए उन्होंने बिहार के 'साहित्यिक इतिहास' को चार खण्डों में समेटा। साहित्य में उनके बेहतरीन योगदान के लिए उन्हें 'पद्मभूषण' और 'वयोवृद्ध साहित्यिक सम्मान' जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कार प्रदान किए गए।

पत्रकारिता के अतिरिक्त सहाय जी ने अनेकों कृतियों की रचना की। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद ने उनकी समस्त रचनाओं को 'शिवपूजन रचनावली' के नाम से चार खण्डों में प्रकाशित किया है। एक पत्रकार और साहित्यकार के रूप में उन्होंने हिंदी भाषा की जीवन भर सेवा की। 21 जनवरी, सन 1963 को संपादकप्रवर आचार्य शिवपूजन सहाय चिरनिद्रा में लीन हो गए। ऐसे समय में जब पत्रकारिता और साहित्य की दूरी बढ़ती प्रतीत हो रही है, हिंदी के दधीचि कहे जाने वाले सहाय जी की स्मृतियां साहित्यिक पत्रकारिता का मार्ग प्रशस्त करने का कार्य करती हैं। ■

मीडिया पर निगरानी सही या गलत

मीडिया पर उठ रहे सवालिया निशानों के मद्देनजर और जैसा कि काटजू ने भी कहा है कि चौथे स्तम्भ पर भी निगरानी रखने की आवश्यकता है, तो आपके विचार इस सन्दर्भ में क्या हैं? क्या वास्तव में मीडिया पर नियंत्रण की जरूरत है और अगर ऐसा है भी तो क्या सत्ता आसीन कोई भी संस्था स्पष्ट रूप से पूरी ईमानदारी और बिना किसी हस्तक्षेप के निर्णय देने में सक्षम हो सकेगी?

आज की मीडिया दो रूपों में विद्यमान है – इंटरटेनमेंट मीडिया और जर्नलिस्टिक मीडिया। जहां तक जर्नलिस्टिक मीडिया का सवाल है, तो इस पर किसी भी तरह की बाहरी निगरानी नहीं होनी चाहिए। वहीं इंटरटेनमेंट मीडिया जो आजकल जर्नलिस्टिक मीडिया पर हावी हो चुका है, उस पर संविधान के तहत संस्थागत निगरानी की आवश्यकता है। जहां तक सवाल का दूसरा पहलू है, जो किसी संस्था की ईमानदारी पर उठाया गया है, तो यह बात स्पष्ट है कि आज मीडिया भी ईमानदार नहीं है। यह व्यवसाय है, व्यावसायिक नीतियां संपादकीय नीतियों को प्रभावित करती हैं। ऐसे में एक दूसरे पर उंगली उठाने के बजाए कम से कम संविधान पर तो भरोसा करना ही चाहिए, फिर चाहे उसमें समय के साथ कुछ संशोधन ही क्यूं न करना पड़े।

चंदन कुमार, जागरण जोश.कॉम

मीडिया पर किसी भी बाहरी निगरानी की आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार लोकतंत्र समय के साथ सतत विकसित होने वाली प्रक्रिया है, उसी तरह स्वतंत्र, स्पष्ट व बेबाक मीडिया को भी उसकी स्वयं की आचार–संहिता बनाने के लिए समय दिया जाना चाहिए। मीडिया पर पहरा या निगरानी इसकी स्वतंत्रता को नष्ट कर देगा। मीडिया के लिए स्वतंत्रता ठीक वैसे ही जरुरी है, जैसे लोकतंत्र के विकास के लिए मीडिया। कुछेक घटनाओं को छोड़ दें, तो भारतीय मीडिया पिछले वर्षों में काफी परिपक्व हो चुका है। उसे विकसित होकर वृक्ष बनने दें, बोनसाई पौधा न बनाएं। वैसे भी जब कानून बनाने से हत्या और बलात्कार नहीं रुके तो मीडिया को कैसे रोकोगे!

विकास शर्मा, नवभारत टाइम्स

गांधी जी ने कहा था की "Freedom of the press is a precious privilege that no country can forgo-" और ये बात काफी हद तक सही भी है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में प्रेस की स्वतंत्रता पर नियंत्रण की बात सही नहीं है। भारत में लोकतंत्र के नाते स्वतंत्र प्रेस का होना बहुत जरूरी है। इस बात से भी इंकार नही किया जा सकता कि आज की मीडिया में सुधार की बहुत आवश्यकता है। मीडिया अपनी विश्वसनीयता भी खोता जा रहा है। बाजार और टीआरपी के हाथों मजबूर मीडिया को अपनी मजबूरी को दूर करना ही होगा, इससे पहले कि सियासतदान और मीडिया से चिढ़े हुए लोग कोई अवांछनीय कदम उठाएं और बात अधिक आगे बढ़े। मीडिया संस्थानों के मालिकों और पत्रकारों को स्वयं ही आत्ममंथन करना चाहिए और अपनी खामियों को दूर करना चाहिए। जस्टिस काटजू की जो चिंता है उस पर भी ध्यान देने की जरुरत है न की उस पर सवाल उठाने की। हमें पहले अपने को ठीक करना होगा तब ही हम किसी पर सवाल उठा सकते हैं। काटजू की चिंता जायज है, सभी को मिलकर कोई सार्थक प्रयास करना होगा। नहीं तो मीडिया पर लगे इन दागों को धो पाना मुश्किल हो जायेगा और हर दाग अच्छे नहीं होते।

हिमांशु डबराल, आज समाज

निस्सन्देह मीडिया सही काम कर रहा है और ये भ्रष्ट नेताओं की पोल खोलने का काम भी बखूबी निभा रहा है, परन्तु मीडिया पर भी कुछ हद तक लगाम रखनी जरूरी है, किन्तु ये लगाम नेताओं के हाथों में नहीं होनी चाहिए। भारतीय सेनाओं की तरह इनकी बागडोर भी सर्वोच्च पद के हाथों में, मतलब महामहिम राष्ट्रपति जी के हाथों में होनी चाहिए।

दिलिप चौरसिया, विद्यार्थी

मेरी राय में काटजू साहब ठीक कह रहे हैं, लेकिन यह बात हजम नहीं होती कि मीडिया पर नियंत्रण की आड़ में सत्ता पक्ष उसकी स्वतंत्रता का दोहन नहीं करेगा। यह हो सकता है कि सरकार और मीडिया के प्रतिनिधियों को मिलाकर एक कमिटी बनाई जाए, जो आम सहमति से एक ड्राफ्ट बनाएं, जो लचीला तो हो, लेकिन मरा हुआ न हो। मीडिया पर सीधा नियंत्रण ठीक नहीं है।

कुलदीप मिश्र, दैनिक भास्कर

नीरा राडिया केस में जिस प्रकार से एक से एक प्रतिष्ठित एवं शीर्ष पत्रकारों की संलिप्तता उजागर हुई उससे आज की मीडिया की स्थिति और भविष्य की दशा और दिशा स्पष्ट होती है। समय रहते मीडिया अपनी भूमिका समझे अन्यथा इसकी परिणति किसी और रूप में सामने होगी और तब कहीं इसे लोकतंत्र की हत्या करार देना अव्यवहारिक सा लगे। समय अब भी हाथ से निकला नहीं है।

सुनील झा, पत्रकार

■

ऑनलाइन हिन्दी दैनिकों में प्रकाशित राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों का अध्ययन

शोधार्थी :– श्रद्धा चौरसिया, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

कम्प्यूटर व सूचना प्रौद्योगिकी के लिए इंटरनेट संचार का प्रभावी माध्यम है, जो सम्पूर्ण जगत पर छाया हुआ है। इंटरनेट, साइबर, ऑनलाइन या वेब पत्रकारिता आज हर वर्ग के लिए एक हकीकत बनती जा रही है। जो लोग ऑनलाइन के अभ्यासी हैं या जिन्हें चौबीसों घंटे इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध है, उन्हें अब कागज पर छपे हुए अखबार उतने ताजे व अच्छे नहीं लगते, क्योंकि माउस के एक क्लिक पर उन्हें बगैर पैसे खर्च किए ढेर सारे अखबार नेट पर पढ़ने को मिल जाते हैं।

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के विकास में युद्ध का आदिकाल से ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इंटरनेट भी अमेरिका और तत्कालीन सोवियत संघ के बीच जारी शीतयुद्ध की देन है। इस शीतयुद्ध में अमेरिकी प्रतिरक्षा अनुसंधान संस्थानों के एक दूसरे के साथ निरन्तर सम्पर्क बनाए रखने के लिए सन 1969 में एडवांस रिसर्च प्रोजेक्ट्स एजेन्सी (एस्पा) ने संस्थानों के कम्प्यूटरों को ''पैकेट स्विच नेटवर्क'' प्रौद्योगिकी की सहायता से एक दूसरे के साथ जोड़ दिया। इस योजना के अनुसार सूचनाओं को छोटे–छोटे टुकड़ों में बांटकर अलग–अलग मार्गों द्वारा निश्चित स्थान पर भेजा जाता था। इसी योजना को इंटरनेट का नाम दिया गया।

सन 1990–91 में शीतयुद्ध समाप्ति के बाद इंटरनेट के द्वार जनसाधारण के लिए खोल दिए गए। इंटरनेट पर किसी भी कम्पनी, संस्था अथवा सरकार का नियंत्रण नहीं है।

''इंटरनेट विश्व के विभिन्न स्थानों पर स्थापित कम्प्यूटरों के नेटवर्क को टेलिफोन लाइन की सहायता से जोड़कर बनाया गया एक अन्तर्राष्ट्रीय सूचना मार्ग है, जिस पर पलक झपकते ही सूचनाएं एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंच जाती है।'' भारत में इस दिशा में 1990 के दशक में प्रयास प्रारम्भ हुए। सार्थक प्रयास यू.जी.सी. द्वारा पुस्तकालयों की सूचना हेतु कम्प्यूटर आधारित प्रणाली के विकास के लिए किया गया। 1986 में सबसे पहले ''इनफ्लीबनेट''(Information and Libarary Network) को केन्द्र सरकार की स्वीकृति मिली। 1994 में भारत को सूचना मार्ग मिल गया। 20 सितम्बर 1994 को भारत 150 देशों के सूचना जाल से जुड़ गया। भारत में विदेश संचार निगम लिमिटेड (VSNL) ने 15 अगस्त 1995 को विश्व भर की सूचनाओं का भंडार सभी के लिए खोल दिया। भारत में निकनेट ''Nicnet (Nation at information Center Network)'' का जाल लगभग 700 उपग्रह आधारित भू–केन्द्रों के माध्यम से लगभग 500 शहरों तक फैला है। 1995 के पूर्व इस प्रकार की सुविधा शिक्षण संस्थानों, अनुसंधान संगठनों तथा सरकार को अर्नेट ''Ernet (Education & Research Network)'' व निकनेट द्वारा उपलब्ध थी। आज विश्व में फैले लगभग 6 करोड़ कंप्यूटर इंटरनेट सुविधा में सम्मिलित हैं। चूंकि भारत में कंप्यूटर का प्रयोग एवं प्रभाव नगरीय क्षेत्रों तक सीमित है, इसलिए इंटरनेट की सुविधा अभी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं है। भारत में जनसंचार माध्यम इंटरनेट से जुड़ रहे हैं। इससे विश्व सूचना के आदान–प्रदान में समय सीमा घटी है तथा परस्पर सीधा सम्पर्क बढ़ा है। 21वीं शताब्दी के पहले वर्ष के अंत तक 100 करोड़ से अधिक की आबादी के लिए प्रति हजार औसतन 26 फोन तथा पूरे देश में लगभग 30 लाख इंटरनेट कनेक्शन हो चुके थे।

प्रिंट मीडिया में भी इंटरनेट/ऑनलाइन संस्करण ने अपनी पैठ बना ली है। शुरू में न्यूयार्क टाइम्स, वाशिंगटन पोस्ट, सी.एन.एन., बी.बी.सी. सहित तमाम बड़े घरानों ने अपने प्रकाशनों के इंटरनेट संस्करण निकाले। न्यू मीडिया के नाम पर डॉट काम का उफान आया। दुनिया भर के अखबारों ने अपने इंटरनेट संस्करण निकाले। भारत में टाइम्स ऑफ इंडिया, हिन्दुस्तान टाइम्स, इंडियन एक्सप्रेस, हिन्दू, ट्रिब्यून, स्टेट्समैन, पायनियर आदि ने भी ऑनलाइन संस्करण निकाले। इसके बाद हिन्दी पत्रकारिता में वेब पत्रकारिता की शुरूआत नई दुनिया समाचारपत्र की सांध्य वेब दुनिया से हुई। समाचारपत्रों में दैनिक जागरण, अमर उजाला, पांचजन्य, दैनिक भास्कर, प्रभात खबर, नवभारतटाइम्स, राजस्थान पत्रिका व राष्ट्रीय सहारा के वेब संस्करण शुरू हुए।

आज प्रत्येक समाचारपत्र की अपनी भाषा, शैली व समाचारों को प्रस्तुत करने का अपना एक अलग तरीका होता है। ऐसे में दैनिक पत्रों के ऑनलाइन संस्करणों में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों में परस्पर समरूपता है या नहीं, इसे पाठकों को जानने की उत्सुकता है। वहीं वेब पत्रकारिता के तेजी से बढ़ते कदम के चलते इसके पाठकों की संख्या में भी प्रतिदिन बढ़ोतरी हो रही है। अतः शोधार्थी श्रद्धा चौरसिया द्वारा **''ऑनलाइन हिन्दी दैनिकों में प्रकाशित राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों का अध्ययन''** विषय पर शोध कार्य बहुत महत्वपूर्ण है। शोध के माध्यम से आमजन के लिए यह जानना अत्यंत सरल हो जाता है कि ऑनलाइन संस्करणों को किस प्रकार से वर्गीकृत करते हैं तथा दैनिक पत्रों के ऑनलाइन संस्करणों की प्रकृति एवं स्वरूप किस प्रकार से होते हैं।

मुद्रित समाचार पत्रों का लगभग एक निश्चित पाठक वर्ग होता है। इसकी अपेक्षा ऑनलाइन संस्करणों का पाठक वर्ग असीमीत होता है, जो सम्पूर्ण विश्व के किसी भी कोने में बैठा इंटरनेट उपभोक्ता हो सकता है। ऐसे में ऑनलाइन संस्करणों के समाचारों की प्रस्तुति तथा दुनिया के किसी भी भाग के ऑनलाइन संस्करण पाठक के लिए इसकी प्रासंगिकता ज्ञात करना भी इस अध्ययन की प्रमुखता रही है। ■

हिन्दू धर्म तथा योग के विकास में धार्मिक चैनलों की भूमिका

सूर्यप्रकाश (अध्यापक, एमसीआरपीवी)

धर्म मनुष्य की एक सार्वभौम अपरिहार्य भावना है। उसने मनुष्य को श्रेष्ठता की ओर अग्रसर किया है। भारतीय दृष्टिकोण से धर्म का अपना अलग ही महत्व है। विभिन्न समूहों के संदर्भ में धर्म के कई रूप और नाम हैं। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में हिन्दू धर्म अद्वितीय है। महाभारत के अनुसार अहिंसा परम धर्म है। भारतीय दर्शन शास्त्र बताते हैं जिस काम को करने से अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति हो, वही धर्म है। समाजशास्त्री श्रीनिवास के अनुसार एकता की अवधारणा हिन्दू धर्म में अन्तर्निहित है।

दूसरी ओर देखा जाये तो आज का समाज विज्ञान के समाज के रूप में दिखता है। विज्ञान ने लोगों के जीवन जीने के तरीके को बिल्कुल ही बदल दिया है। तकनीकी विकास का प्रमुख कारण विज्ञान ही रहा है। पश्चिमी देशों के समकक्ष बनने की होड़ में आज भारत भी विज्ञान के हर क्षेत्र में तेजी से दौड़ रहा है। आज आम जनमानस पूरी तरह से विज्ञान की गिरफ्त में है। वैज्ञानिक ज्ञान, प्रौद्योगिक प्रगति, संचार के साधन और धर्म निरपेक्षता की प्रकृति के प्रसार के कारण हिन्दू धर्म में भी बहुत से परिवर्तन आये हैं।

मीडिया संचार की बात करें तो भारत में प्रकाशित समाचार पत्र तथा पत्रिकाओं में धर्म को विशेष स्थान दिया गया है। इनमें लगातार धर्मसंबन्धी आलेख छपते रहते हैं। केवल गीता प्रेस की बात करें तो यह करोड़ों धार्मिक पुस्तकें बेचकर समाज की धार्मिक भूख मिटा रही है। आकाशवाणी के अलावा रेडियो एफएम पर भी धार्मिक भजनों का प्रसारण आरम्भ हो चुका है। इंटरनेट पर असंख्य वेबसाइट के अलावा धार्मिक ब्लॉग तथा कम्युनिटी से विश्व आज रू–ब–रू हो रहा है। टेलीविजन की बात करें तो हिन्दुस्तान मे लगभग 550 टीवी चैनल हैं जिसमें से 195 से अधिक समाचार चैनल हैं। समाचार चैनल तथा मनोरंजन चैनल समय–समय पर धार्मिक सीरियल तथा धर्म संबंधित विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं।

धार्मिक चैनलों की बात करें तो धर्म और अध्यात्म विषय से लगभग 40 चैनल जुड़े हुए हैं। चैनल में लगभग 18 हिन्दू धर्म से, 12 ईसाई धर्म से, 5 इस्लाम से तथा 3 पंजाबी धर्म से जुड़े चैनल हैं। आस्था, साधना, जी जागरण, ओम, दिशा, धर्म, संस्कार जैसे चैनल हिन्दू धर्म से जुड़े हैं। उसी प्रकार एंजिल, पॉवर–विजन, बाइबिल तथा होप चैनल ईसाई धर्म से तथा पीस टीवी, हिदायत तथा पी–टीवी जैसे चैनल इस्लाम धर्म से जुड़े प्रमुख चैनल हैं। देखा जाए तो उत्तर भारत में हिन्दू धर्म से जुड़े चैनल और दक्षिण भारत मे ईसाई धर्म से जुड़े चैनलों की संख्या सर्वाधिक है। इन चैनलों की भाषा केवल हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी ही नहीं बल्कि तमिल, तेलुगु, कन्नड़, उड़िया, पंजाबी जैसी क्षेत्रीय भाषाओं में भी उपलब्ध है।

इन चैनलों में हिन्दू धर्म की अवधारणा तथा दर्शन को उजागर करने के लिए विभिन्न धार्मिक तथा आध्यात्मिक गुरूओं की संख्या भी कम नहीं है। स्वामी सुखाबुधानंद का विषय प्रकृति के उर्जा के तत्व तथा एकाग्रता पर केन्द्रित है। श्रीमती जयाराव वेदांत से समाज को अवगत करा रही हैं। मुरारी बापू की रामकथा तथा पूज्य दीपकभाई देसाई अलग–अलग सत्संग कार्यक्रमों के माध्यम से समाज में धर्म के प्रति जागरुकता फैला रहे हैं। श्री कृपालु जी महाराज के दर्शकों की संख्या भी कम नहीं है। स्वामी रामदेव, आसाराम बापू और अवधूत बाबा शिवानंद जैसे गुरू शिवयोग, क्रमयोग, भक्तियोग, अनुलोम–विलोम तथा योग को जन–जन तक पहुंचाने में बढ़–चढ़ कर कार्य कर रहे हैं। प्रजापति ब्रह्मकुमारी 'ध्यान' द्वारा तथा श्री श्री रविशंकर 'आर्ट ऑफ लिविंग' के द्वारा धर्म को आम जनमानस से जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं।

इन सभी धार्मिक चैनलों में चौबीसों घंटे और सातों दिन धार्मिक प्रवचन, सत्संग के अलावा धार्मिक फिल्में, गीत, धारावाहिक, विभिन्न थेरेपी, कर्म–काण्ड, तंत्र–मंत्र, पूजा पद्धति, ध्यान, निर्माण, एरोबिक, योग, भजन, कीर्तन इत्यादि संबंधित कार्यक्रम खूब चलते रहते हैं। इसके अलावा स्वास्थ्य, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, ब्यूटी–टिप्स, वास्तु–शास्त्र, ज्योतिष, नक्षत्र, पूजा व धार्मिक स्थलों तथा तीज–त्यौहार से जुड़े कार्यक्रम भी देखने को मिलते हैं। कुल मिलाकर यह धार्मिक चैनल हिन्दू धर्म की दबी हुई अवधारणा और ज्ञान को पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। इन चैनलों की हिन्दू धर्म के दर्शन की व्याख्या करने में एवं वर्षों से छुपी व विखंडित धर्म से जुड़ी हुई भ्रान्तियों को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। धर्म तथा योग को आज जन–जन तक पहुंचाने में धार्मिक चैनलों का महत्वपूर्ण योगदान है। ■

इतिहास को कैमरे में कैद करने वाली 'डालडा–13' का निधन

भारत की पहली महिला फोटो पत्रकार होमाई व्यारावाला का रविवार, 15 जनवरी को वड़ोदरा के एक निजी अस्पताल में निधन हो गया। वे 99 वर्ष की थीं। वर्ष 1913 में गुजरात के नवसारी में जन्मीं होमाई व्यारावाला पिछले कुछ वर्षों से वड़ोदरा में ही रह रही थीं।

होमाई ने मुंबई के जे.जे स्कूल ऑफ आर्ट्स से डिप्लोमा किया था। सन 1938 में फोटोग्राफी की शुरूआत करने वाली होमाई व्यारावाला को 'डालडा–13' के नाम से भी जाना जाता था। व्यारावाला ने भारत के अंतिम वायसराय रहे लॉर्ड माउंटबेटन, जवाहरलाल नेहरू एवं लालबहादुर शास्त्री जैसे उस दौर के नामचीन नेताओं के दुर्लभ चित्रों को अपने कैमरे में कैद किया था।

होमाई व्यारावाला को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू के शपथग्रहण समारोह की तस्वीरों को भी कैमरे में कैद करने का अवसर प्राप्त हुआ था। उनके द्वारा ली गई तस्वीरों के बारे में कहा जाता है कि– जैसी महत्वपूर्ण और दुर्लभ तस्वीरें उन्होंने अपने कैमरे में कैद की थी, वैसी कोई और नहीं कर सकता था। सन 1940 के आरंभ में 'ब्रिटिश इन्फर्मेशन सर्विसेज' से उन्होंने बतौर फोटोग्राफर अपने सफर की शुरूआत की।

जब व्यारावाला ने फोटोग्राफी की दुनिया में कदम रखा था उस समय कैमरा अपने आप में आश्चर्य का विषय था। उन्होंने जिस समय में फोटोग्राफी के क्षेत्र में कदम रखा उस समय एक महिला का इस पेशे से जुड़ना एक अचरज था। वे फोटोग्राफी से जुड़ी ही नहीं, बल्कि अपनी जीवटता की बदौलत उन्होंने इस क्षेत्र में ख्याति भी प्राप्त की। भारत विभाजन की बैठक एवं शपथ ग्रहण समारोह जैसे ऐतिहासिक अवसरों पर फोटोग्राफी कर उन्होंने फोटो पत्रकारिता के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की।

होमाई व्यारावाला का जाना फोटो पत्रकारिता के युग के अवसान के समान है। उनके द्वारा लिए गए चित्र सदैव ही उनकी यादों के रूप में जीवंत रहेंगे।

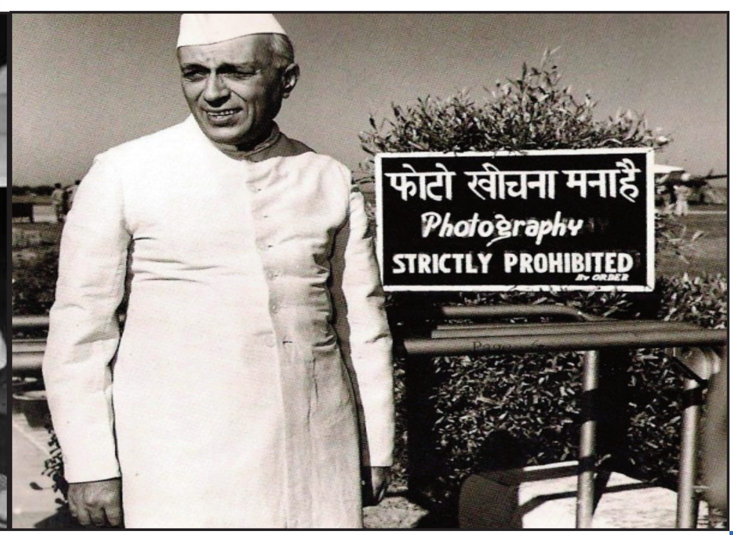

मीडिया–शब्दावली

1. निर्भरता सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार मीडिया की ताकत श्रोताओं की मीडिया पर निर्भरता में निहित है। समाज के जो व्यक्ति मीडिया पर आश्रित नहीं होते, उन पर मीडिया का प्रभाव बहुत सीमित होता है।

2. सांस्कृतिक आघात– इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति जब एक सांस्कृतिक परिवेश से दूसरे सांस्कृतिक परिवेश में जाता है तो वह अपनी परंपरागत मान्यताओं और नवीन मान्यताओं के बीच संतुलन स्थापित करने में कुछ समय तक अक्षम रहता है। वह दिग्भ्रमित हो जाता है। संचार की भाषा में इस घटना को सांस्कृतिक आघात कहा जाता है।

3. भुलावा– यह मीडिया द्वारा वर्तमान समय में अपनायी जाने वाली प्रमुख रणनीति है। इसके अंतर्गत सरकारी दबाव के कारण मीडिया कुछ खास मुद्दों से जनता का ध्यान हटाने के लिए फालतू मुद्दों को अधिक तरजीह देती है।

4. शब्दार्थ सर्जन– वर्तमान में बाजार कुछ लोकप्रिय शब्दों को भुनाने के लिए उनको मनमाफिक अर्थ दे रहा है। इसी प्रक्रिया को शब्दार्थ सर्जन कहा जाता है। जैसे कि– अंग्रेजी के बोल्ड शब्द का मतबल साहसी होता था। पहले यह क्रांतिकारियों और व्यवस्था परिवर्तन में संलिप्त लोगों के लिए प्रयोग होता था । अब इसका प्रयोग बाजार परंपराओं को तार–तार करने वाले, कम कपड़े पहने वाले लोगों के लिए किया जा रहा है।

5. चर्चावली सिद्धांत– सूचना प्रवाह में से कुछ सूचनाओं को अधिक महत्व प्रदान करने के सिद्धांत को संचार की भाषा में चर्चावली सिद्धांत कहा जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार कुछ सूचनाओं को सापेक्षिक आधार पर अधिक महत्व प्रदान करते हुए उन्हें चर्चा में लाया जाता है अथवा एजेंडा तय करने का कार्य किया जाता है।